सुकुल की बीबी

बहुत दिनों की बात है। तब मैं लगातार साहित्य-समुद्र मंथन कर रहा था। पर निकल रहा था केवल गरल। पान करनेवाले अकेले महादेव बाबू ('मतवाला'-संपादक)।—शीघ्र रत्न और रंभा के निकलने की आशा से अविराम मुझे मथते जाने की सलाह दे रहे थे। यद्यपि विष की ज्वाला महादेव बाबू की अपेक्षा मुझे ही अधिक जला रही थी, फिर भी मुझे एक आश्वासन था कि महादेव बाबू को मेरी शक्ति पर मुझ से भी अधिक विश्वास है। इसी पर वेदांत-विषयक नीरस एक सांप्रदायिक पत्र का संपादन-भार छोड़ कर मनसा-वाचा-कर्मणा सरस कविता-कुमारी की उपासना में लगा। इस चिरंतन चिंतन का कुछ ही महीने में फल प्रत्यक्ष हुआ; साहित्य-सम्राट् गोस्वामी तुलसीदासजी की मदन-दहन-समय वाली दर्शन-सत्य उक्ति हेच मालूम दी, क्योंकि गोस्वामीजी ने, उस समय, दो ही दंड के लिये, कहा है—'अबला बिलोकहिं पुरुषमय अरु पुरुष सब अबलामयम्।' पर मैं घोर सुषुप्ति के समय को छोड़ कर, बाक़ी स्वप्न और जाग्रत् के समस्त दंड, ब्रह्मांड को अबलामय देखता था।

इसी समय दरबान से मेरा नाम लेकर किसी ने पूछा—"हैं?"

मैंने जैसे वीणा-झंकार सुनी। सारी देह पुलकित हो गई, जैसे प्रसन्न होकर पीयूषवर्षी कंठ से साक्षात् कविता-कुमारी ने पुकारा हो, बड़े अपनाव से मेरा नाम लेकर। एक साथ कालिदास, शेक्सपियर, बंकिमचंद्र और रवींद्रनाथ की नायिकाएँ दृष्टि के सामने उतर आईं। आप ही एक निश्चय बँध गया—यह वही हैं, जिन्हें कल कार्नवालिस-स्कायर पर देखा था—टहल रही थीं। मुझे देख कर पलकें झुका ली थीं। कैसी आँखें वे!—उनमें कितनी बातें!—मेरे दिल के साफ़ आईने में उनकी सच्ची तसबीर उतर आई थी, और मैं भी, वायु-वेग से उनकी बग़ल से निकलता हुआ, उन्हें समझा आया था कि मैं एक अत्यंत सुशील, सभ्य, शिक्षित और सच्चरित्र युवक हूँ। बाहर आकर, गेट पर, एक मोटर खड़ी देखी थी। ज़रूर वह उन्हीं की मोटर थी। उन्होंने ड्राइवर से मेरा पीछा करने के लिये कहा होगा। उससे पता मालूम कर, नाम जानकर, मिलने आई हैं। अवश्य यह बेथून-कॉलेज की छात्रा हैं। उसी के सामने मिली थीं। कविता से प्रेम होगा। मेरे छंद की स्वच्छंदता कुछ आई होगी इनकी समझ में, तभी बाक़ी समझने के लिये आई हैं।

उठकर जाना अपमानजनक जान पड़ा। वहीं से दरबान को ले आने की आज्ञा दी।

अपना नंगा बदन याद आया। ढकता, कोई कपड़ा न

था। कल्पना में सजने के तरह-तरह के सूट याद आए, पर, वास्तव में, दो मैले कुर्त्ते थे। बड़ा ग़ुस्सा लगा, प्रकाशकों पर। कहा, नीच हैं, लेखकों की क़द्र नहीं करते। उठ कर मुंशीजी के कमरे में गया, उनकी रेशमी चादर उठा लाया। क़ायदे से गले में डाल कर देखा, फबती है या नहीं। ज़ीने से आहट नहीं मिल रही थी, देर तक कान लगाए बैठा रहा। बालों की याद आई—उकस न गए हों। जल्द-जल्द आईना उठाया। एक बार मुँह देखा, कई बार आँखें सामने रेल-रेलकर। फिर शीशा बिस्तरे के नीचे दबा दिया। शॉ की 'गेटिंग मैरेड' सामने करके रख दी। डिक्शनरी की सहायता से पढ़ रहा था, डिक्शनरी किताबों के अंदर छिपा दी। फिर तन कर गंभीर मुद्रा से बैठा।

आगंतुका को दूसरी मंज़िल पर आना था। ज़ीना गेट से दूर था।

फिर भी देर हो रही थी। उठ कर कुछ क़दम बढ़ा कर देखा, मेरे बचपन के मित्र मिस्टर सुकुल आ रहे थे।

बड़ा बुरा लगा, यद्यपि कई साल बाद की मुलाक़ात थी। कृत्रिम हँसी से होंठ रँग कर उनका हाथ पकड़ा, और लाकर उन्हें बिस्तरे पर बैठाला।

बैठने के साथ ही सुकुल ने कहा—"श्रीमतीजी आई हुई हैं।"

मेरी रूखी ज़मीन पर आषाढ़ का पहला दौंगरा गिरा।

प्रसन्न होकर कहा—"अकेली हैं, रास्ता नहीं जाना हुआ, तुम भी छोड़ कर चले आए, बैठो तब तक, मैं लिवा लाऊँ—तुम लोग देवियों की इज़्ज़त करना नहीं जानते।"

सुकुल मुस्किराए, कहा—"रास्ता न मालूम होने पर निकाल लेंगी—ग्रैज्युएट हैं, ऑफ़िस में 'मतवाला' की प्रतियाँ ख़रीद रही हैं, तुम्हारी कुछ रचनाएँ पढ़ कर—ख़ुश होकर।"

मैं चल न सका। गर्व को दबा कर बैठ गया। मन में सोचा, कवि की कल्पना झूठ नहीं होती। कहा भी है, 'जहाँ न जाय रवि, वहाँ जाय कवि।'

कुछ देर चुपचाप गंभीर बैठा रहा। फिर पूछा—"हिंदी काफ़ी अच्छी होगी इनकी?"

"हाँ," सुकुल ने विश्वास के स्वर से कहा—"ग्रैज्युएट हैं।"

बड़ी श्रद्धा हुई। ऐसी ग्रैज्युएट देवियों से देश का उद्धार हो सकता है, सोचा। निश्चय किया, अच्छी चीज़ का पुरस्कार समय देता है। ऐसी देवीजी के दर्शनों की उतावली बढ़ चली, पर सभ्यता के विचार से बैठा रहा, ध्यान में उनकी अदृष्ट मूर्ति को भिन्न-भिन्न प्रकार से देखता हुआ।

एक बार होश में आया, सुकुल को धन्यवाद दिया!

(२)

सुकुल का परिचय आवश्यक है। सुकुल मेरे स्कूल के दोस्त हैं, साथ पढ़े। उन लड़कों में थे, जिनका यह सिद्धांत होता है कि सर कट जाय, चोटी न कटे। मेरी समझ में सर और चोटी की तुलना नहीं आई; मैं सोचता था, पूँछ कट जाने पर जंतु जीता है, पर जंतु कट जाने पर पूँछ नहीं जीती; पूँछ में फिर भी खाल है, ख़ून है, हाड़ और मांस है, पर चोटी सिर्फ़ बालों की है, बालों के साथ कोई देहात्मबोध नहीं। सुकुल-जैसे चोटी के एकांत उपासकों से चोटी की आध्यात्मिक व्याख्या कई बार सुनी थी, पर सग्रंथि बालों के बल्ब में आध्यात्मिक इलेक्ट्रिसिटी का प्रकाश न मुझे कभी देख पड़ा, न मेरी समझ में आया। फलतः सुकुल की और मेरी अलग-अलग टोलियाँ हुईं। उनकी टोली में वे हिंदू-लड़के थे, जो अपने को धर्म की रक्षा के लिये आया हुआ समझते थे, मेरी में वे लड़के, जो मित्र को धर्म से बड़ा मानते हैं, अतः हिंदू, मुसलमान, क्रिस्तान, सभी। हम लोगों के मैदान भी अलग-अलग थे। सुकुल का खेल अलग होता था, मेरा अलग। कभी-कभी मैं मित्रों के साथ सलाह करके सुकुल की हाकी देखने जाता था, और सहर्ष, सुविस्मय, सप्रशंस, सक्लैप और सनयन-विस्तार देखता था। सुकुल की पार्टी-की-पार्टी की चोटियाँ, स्टिक बनी हुई, प्रतिपद-गति की ताल-ताल पर, सर-सर से

हाकी खेलती हैं। वली मुहम्मद कहता था, जब ये लोग हाकी में नाचते हैं, वी चोटियाँ सर पर ठेका लगाती हैं। किलिप कहता था, See, the Hunter of the East has caught the Hindoos' forehead in a noose of hair. (देखो, पूरब के शिकारी ने हिंदुओं के सर को बालों के फंदे में फँसा लिया है)। इस तरह शिखा-विस्तार के साथ-साथ सुकुल का शिक्षा-विस्तार होता रहा। किसी से लड़ाई होने पर सुकुल चोटी की ग्रंथि खोल कर, बालों को पकड़ कर ऊपर उठाते हुए कहते थे, मैं चाणक्य के वंश का हूँ।

धीरे-धीरे प्रवेशिका-परीक्षा के दिन आए। सुकुल की आँखें रक्त मुकुल हो रही थीं। एक लड़के ने कहा, सुकुल बहुत पढ़ता है; रात को खूँटी से बँधी हुई एक रस्सी से चोटी बाँध देता है, ऊँघने लगता है, तो झटका लगता है, जग कर फिर पढ़ने लगता है। चोटी की एक उपयोगिता मेरी समझ में आई।

मैं कवि हो चला था। फलतः पढ़ने की आवश्यकता न थी। प्रकृति की शोभा देखता था। कभी-कभी लड़कों को समझाता भी था कि इतनी बड़ी किताब सामने पड़ी है, लड़के पास होने के लिये सर के बल हो रहे हैं, वे उद्भिद्-कोटि के हैं। लड़के अवाक् दृष्टि से मुझे देखते रहते थे, मेरी बात का लोहा मानते हुए।

पर मेरा भाव बहुत दिनों तक नहीं रहा। जब आठ-दस रोज़ इम्तहान के रह गए, एक दिन जैसे नाड़ी छूटने लगी। ख़याल आते ही कि फ़ेल हो जाऊँगा, प्रकृति में कहीं कविता न रह गई; संसार के प्रिय-मुख विकृत हो गए; पिताजी की पवित्र मूर्ति प्रेत की-जैसी भयंकर दिखी; माताजी की स्नेह की वर्षा में अविराम बिजली की कड़क सुनाई देने लगी; वंश-मर्यादा की रक्षा के लिये विवाह बचपन में हो गया था—नवीन प्रिया की अभिन्नता की जगह वंकिम दृगों का वैमनस्य-हलाहल क्षिप्त होने लगा; पुरजनों के प्रगाढ़ परिचय के बदले प्राणों को पार कर जाने वाली अवज्ञा मिलने लगी। इस समय एक दिन देखा, सुकुल के शीर्ण मुख पर अध्यवसाय की प्रसन्नता झलक रही है।

किताब उठाने पर और भय होता था, रख देने पर दूने दबाव से फ़ेल हो जानेवाली चिंता। फलतः कल्पना में पृथ्वी-अंतरिक्ष पार करने लगा। कल्पना की वैसी उड़ान आज तक नहीं उड़ा। वह मसाला ही नहीं मिला। अंत में निश्चय किया, प्रवेशिका के द्वार तक जाऊँगा, धक्का न मारूँगा, सभ्य लड़के की तरह लौट आऊँगा। अस्तु, सबके साथ गया। और-और लड़कों ने पूरी शक्ति लड़ाई थी, इसलिये, परीक्षा-फल के निकलने से पहले, तरह-तरह से हिसाब लगा कर अपने-अपने नंबर निकालते थे, मैं निश्चित, इसलिये निश्चिंत था; मैं जानता था कि गणित की नीरस

कापी को पद्माकर के चुहचुहाते कवित्तों से मैंने सरस कर दिया है; फलतः, परीक्षा-समुद्र-तट से लौटते वक्त, दूसरे तो रिक्त-हस्त लौटे, मैं दो मुट्ठी बालू लेता आया; घर में पिता, माता, पत्नी, परिजन, पुरजन सबके लिये आवश्यकतानुसार उसका उपयोग किया।

मेरे अविचल कंठ से यह सुन कर कि सूबे में पहला स्थान मेरा होगा, अगर ईमानदारी से पर्चे देखे गए, लोग विचलित हो उठे। पिता जी तो गर्व से गर्दन उठाए रहने लगे। पर ज्यों-ज्यों फल के दिन निकट होते आए, मेरी आत्मा की वल्लरी सूखती गई। वह जगह मैंने नहीं रक्खी थी कि पिताजी एक साल के लिये माफ़ कर देते। घर छोड़े बग़ैर निस्तार न देख पड़ा। एक दिन माता जी से मैंने कहा—"जगतपुर के ज़मींदारों ने बारात में चलने के लिये बुलाया है, और ऐसा कहा है, जैसे मेरे गए बग़ैर बारात की शोभा न बन पड़ती हो।" ज़मींदारों के आमंत्रण से माताजी छलक उठीं; पिताजी को पुकार कर कहा—"सुनते हो, तुम्हारे सपूत ज़मींदारों के यहाँ उठने-बैठने लगे हैं, बारात में चलने का न्योता है।" पिताजी प्रसन्नता को दबा कर बोले—"तो चला जाय; जो कहे, कपड़े बनवा दो और ख़र्चा दे दो।" एकांत में पत्नीजी मिलीं, बड़ी तत्परता से बोलीं—"वहाँ नाच देख कर भूल न जाइएगा।" "राम भजो", मैंने कहा—"क्व सूर्यप्रभवो वंशः क्व

चाल्पविषया मतिः।" "मैं इसका मतलब भी समझूँ?" वह एक क़दम आगे बढ़ कर बोलीं, मन में निश्चय कर कि तुलना में मैंने उन्हें श्रेष्ठ बतलाया है। समझ कर मैंने कहा—"कहाँ तुम्हारी बाँस-सी कोमल दुबली देह से सूरज का प्रकाश, कहाँ वह ज़हर की भरी मोती रंडी!" "चलो" कह कर वह गर्व-गुरु-गमन से काम को चल दीं।

समय पर कपड़े बने, और खर्चा भी मिला। पश्चात्, यथा-समय, जगतपुर के ज़मींदारों की बारात के लिये रवाना होकर कुछ दूर से राह काट कर ऐन गाड़ी के वक्त मैं स्टेशन पहुँचा। वहाँ से ससुराल का टिकट लिया। रास्ते-भर में खासी मुहर्रमी सूरत बना ली। ससुरालवाले देखते ही दंग हो गए। ससुरजी, सासुजी और और लोग घेर कर कुशल पूछने लगे। मैंने उखड़ी आवाज़ में कहा—"गाँव में एक खेत के मामले में फ़ौजदारी हो गई है, दुश्मनों के कई घायल हुए हैं, इसलिये पिताजी की गिरफ़्तारी हो गई है, गिरफ़्तार होते वक्त उन्होंने कहा है, अपने ससुरजी से विवाह के क़रारवाले बाक़ी ३०० रुपये लेकर, दूसरे दिन ज़िले में आकर ज़मानत से छुड़ा लेना।" ससुरजी सन्न हो गए। सासुजी रोने लगीं, और और लोगों को काठ मार गया। ससुरजी के पास रुपए नहीं थे। पर सासुजी घबराईं कि ऐसे मौक़े पर मदद न की जायगी, तो त्रिपाठीजी क़ैद से छूट कर अपने

लड़के की दूसरी शादी कर लेंगे। इस विचार से नथ, करधनी, पायज़ेब आदि कुछ गहने रेहन कर १५० रु० मुझे देती हुई बोलीं—"बच्चा, इससे ज्यादा नहीं हो सका; हम तो तुम्हारे सदा के ऋणी हैं; फिर धीरे-धीरे पूरा कर देंगे, त्रिपाठी से हाथ जोड़ कर हमारी प्रार्थना है।"

मैंने उन्हें सांत्वना दी कि बाक़ी रुपए लेने मैं उनके घर कभी न जाऊँगा। एक विपत्ति की बात थी, वह इतने से टल जायगी। सासुजी मारे आनंद के रोने लगीं। मैंने बड़ी भक्ति से उनके चरण छुए, और यथासमय स्टेशन आकर कलकत्ते का टिकट कटाया।

यहाँ से मेरे नए जीवन की नींव पड़ी। अख़बारों में देखा, सुकुल प्रथम श्रेणी में पास हुआ है। चार साल बाद वह बी० ए० हुआ, एम्० ए० हुआ, मैं मालूम करता रहा, अच्छी जगह पाई, अब परीक्षा समाप्त कर परीक्षक है; मैं ज्यों-का-त्यों; एक बार धोखा खाकर बराबर धोखा खाता रहा; एक परीक्षा की तैयारी न करके कभी पास न हो सका।—कितनी परीक्षाएँ दीं।

तब से यह आज सुकुल से मेरी मुलाक़ात है। एक बार सारा इतिहास मेरे मस्तिष्क में चक्कर लगा गया। अब वह पिताजी नहीं, माताजी नहीं, पत्नी नहीं, केवल मैं हूँ, और परीक्षा-भूमि, सामने प्रश्नों की अगणित तरंग-माला!

(३)

मैं विचार में था। जब आँख खुली, साकार सुघरता मेरे सामने थी, अविचल दृष्टि से मुझे देखती हुई। अंजलि बाँध कर नमस्कार किया, ललित अँगरेज़ी से संबर्द्धित करते हुए—" Good morning, Poet of Vers Libre !" मैं उठा। नमस्कार कर सुकुल के नज़दीक वाली कुर्सी पर बैठने के लिये बड़े अदब से हाथ बढ़ा कर बताया।

वह खड़ी थीं। लहराती हुई मंद गति से चलीं। बैठ कर मुझे देख कर मुस्किराती हुई बोलीं, "आप ख़ूब लिखते हैं !"

प्यासा मृग मरीचिका के सरोवर का व्यंग्य नहीं समझता। मुझे यह पहली तारीफ़ मिली थी। इच्छा हुई, जाऊँ, महादेव बाबू को भी बुला लाऊँ, कहूँ कि अब अमृत निकलने लगा है, चुल्लू बाँध कर चलिए। लेकिन अभी उतने अमृत से मुझे ही अघाव न हुआ था। बैठा हुआ एकांत भक्त की दृष्टि से देखता रहा।

रक्त अधरों के करारों से अमृत का निर्झर बहा, वह बोलीं—" सुकुल आपकी कविता नहीं समझते, मैं समझाती हूँ।"

सुकुल न रह सके। कहा—" ऐसा समझना वास्तव में कहीं नहीं देखा; असर भी क्या; चाहे कुछ न समझिए, पर सुनने से जी नहीं ऊबता। एम्० ए० क्लास तक किसी प्रोफ़ेसर के लेक्चर में यह असर न था।"

"हाँ-हाँ जनाब", देवीजी मेरुमूल सीधा करके बोलीं—"यह एम० ए० क्लास से आगे की पढ़ाई है; जब पास करके आए थे, हाथ-भर की चोटी थी; समझ में एक वैसी ही मेख।"

सुकुल की चोटी मेरी निगाह में सुकुल से अधिक परिचित थी। पर उनके आने पर मैंने उन्हें ही देखा था। चोटी सही-सलामत है या नहीं, मालूम करने के लिये निगाह उठाई कि देवीजी बोलीं—"अब तो चाँद है। सुकुल को सुकुल बनाते, सच कहती हूँ, मुझे बड़ी मिहनत उठानी पड़ी है।'

उन्हें धन्यवाद दूँ, हिम्मत बाँध रहा था कि बोलीं—"मैं स्वयं सुकुल की सहधर्मिणी नहीं।"

मेरा रंग उड़ गया।

मुझे देख कर, मेरे ज्ञान पर हँस कर जैसे बोलीं—"सुकुल स्वयं मेरे सहधर्मी हैं।"

मैं साहित्यिका को तअज्जुब की निगाह से देखने लगा।

इतने पर उनकी कृपा की दृष्टि मुझ पर पड़ी, बोलीं—"मैं आपको भी सहधर्मी बनाना चाहती हूँ।"

मैं चौंका; सोचा, "क्या यह द्रौपदीवाला धर्म है?"

देवीजी ने कलाई वाली घड़ी देखी और उठ कर खड़ी हो गई। भौंहें चढ़ा कर बोलीं—'बहुत देर हो गई, चलिए, आपको लेने आई थी, टैक्सी खड़ी है।" फिर बढ़कर, मेरे

कंधे पर हाथ रख कर बड़े ही मधुर स्वर से पूछा—"आप मुर्गी तो खाते हैं ?"

मैंने सुकुल को देखा। सुकुल सिर्फ मुस्किराए। समझ कर मैंने कहा—"मेरा तो बहुत पहले से सिद्धांत है।"

वह चलीं। मैं भी उसी तरह चद्दर ओढ़े सुकुल के पीछे चला।

(४)

रास्ते-भर तरह-तरह के विचार लड़ते रहे। समाज में इतनी आज़ादी नहीं। स्त्री के लिये तो बिलकुल नहीं। मुर्गी किसी तरह नहीं चल सकती। मैं खाता हूँ, छिपा कर। क्या यह स्त्री·····, पर सुकुल तो सुकुल हैं।

सुकुल का घर आ गया। एक छोटा-सा दुमंज़िला मकान। इधर-उधर बंगालियों की बस्ती। जगह-जगह कूड़े के ढेर, ऊपर मछलियों के सेल्हर, बदबू आती हुई।

हम लोग उतरे। भीतर पैठते दाहने हाथ एक छोटा-सा बैठका। एक डेढ़ साल के बच्चे को दासी खेलाती हुई। श्रीमतीजी को देख कर बच्चा मा-मा करता हुआ उतावला हो गया; दोनो हाथ फैला कर मा के पास आने के लिये कूद कर दासी की गोद में लटक रहा। लेकर देवीजी प्यार करने लगीं। सुकुल ने दासी को मकान खोलने के लिये कुँजी दी।

एक सहृदय बात कहना चाहिए, सोच कर मैंने कहा—"भूखा है, शायद दूध पीना चाहता है।"

देवीजी ने षोड़शी के कटाक्ष से देखा। कहा—"दासी पिला देगी।"

मैंने पूछा—"क्या यह आपका बच्चा नहीं है?"

हँस कर बोलीं "मेरा? है क्यों नहीं? पर दूध मेरे नहीं होता।"

मैंने निश्चय किया, शिक्षित महिला हैं, यौवन है, अभी मातृभाव नहीं आया, इसीलिये दूध नहीं होता। मन में विधाता को धन्यवाद देता रहा।

"चलिए", वह बोलीं—"ऊपर चलें, एकांत में बातें होंगी, सुकुल बाज़ार जायँगे मुर्ग़ी लेने।"

बच्चे को फिर दासी के हवाले कर दिया। मैं उनके पीछे चला, यह सोचता हुआ कि एकांत में सहधर्मी बनाने का प्रस्ताव न हो। चित्त को क़ाबू में न कर सका, वह पुलकित होता रहा।

यह कुछ सजा हुआ शयन-कक्ष था। "बैठिए" कह कर वह स्टोव जलाने लगीं। मैं आइने में उनकी पंप करती तस्वीर देखता रहा।

(५)

चाय, पान और सिगरेट मेज़ पर लगा कर बैठीं। प्लेट पकड़ कर मेरा प्याला बढ़ाती हुई मधुर कंठ से बोलीं—"शौक़ कीजिए।"

विनम्र भाव से मैंने दूसरी ओरवाली बाट पकड़ी, और आँखों में ही उन्हें धन्यवाद दिया।

निगाह नीची कर मुस्किराती हुई उन्होंने अपना प्याला होठों से लगाया। आधी चाय चुक जाने पर पूछा—"आप मेरे सहधर्मी हैं तो ?"

पेट में, उतनी ही चाय से, समंदर लहराने लगा। ऊपर तूफ़ान। श्याम तट पर भावों के कितने सजे सुदृढ़ मकान उड़ गए। ऐसी खुशी हुई। कहा—"आप लेकिन सुकुल की.....

"बीबी हैं ?—हाँ, हूँ।"

"फिर मैं....."

"कैसे बीबी बना सकता हूँ ?"

ऐसा धर्म-संकट जीवन में कभी नहीं पड़ा। मेरा सारा समंदर सूख गया, तूफ़ान न-जाने कहाँ उड़ गया, सिर्फ़ रेगिस्तान रह गया, जो इस ताप से और तपने लगा।

मुझे चुपचाप बैठा अनमेल दृष्टि से देखता हुआ देख कर वह बोलीं—"आप बुरा न मानें, मैंने देखा है, मर्दों में एक पैदायशी नासमझी है; वह ख़ास तौर से खुलती है जब औरतों से वे बातचीत करते हैं।"

मान लेने में ही बचत मालूम दी। मैंने कहा—"जी हाँ, औरतों के सामने उनकी समझ काम नहीं करती।"

"हाँ," वह बोलीं—सुकुल को आदमी बनाती-बनाती

मैं हार गई। 'बीबी' को ही लीजिए। बीबी तो मैं सुकुल की भी हो सकती हूँ, हूँ ही, आपकी भी हो सकती हूँ।"

मैं सूख तो गया, पर प्रसन्नता फिर आई। मैंने बिना कुछ सोचे एक उद्रेक में कह दिया—"हाँ।" "आप नहीं समझे", वह बोलीं—"आप साहित्यिक हैं तो क्या, फिर भी सुकुल के दोस्त हैं। बीबी की बहुत व्यापकता है।"

"ज़रूर", मैंने कहा।

उन्होंने कान न दिया। कहती गई—

"छोटी बहन, भतीजी, लड़की, भयहू (छोटे भाई की स्त्री) सबके लिये बीबी शब्द आता है। आपकी 'हाँ' किस अर्थ के लिये है?"

मैंने डूब कर, कुछ कुल्ले पानी पीकर, जैसे थाह पाई। प्रसन्न होने की चेष्टा करते हुए कहा—"बहन के अर्थ में।"

उन्होंने कहा,—देखिए,—मर्द की बात एक होती है।"

इज्ज़त बचाने के लिये और ज़ोर देकर मैंने कहा—"हाँ, मुकर जाऊँ, तो मर्द नहीं।"

लजा कर उन्होंने एक बार अपनी आँख बचाई। सँभल कर बोलीं—"हम बड़ी विपत्ति में हैं। साल भर से छिपे फिरते हैं। मैं बचने के लिये सुकुल से उनके मित्रों का परिचय पूछती रही। सिर्फ़ आपका परिचय मुझे त्राण देने

वाला मालूम दिया। पर पता मालूम न था। साल-भर से लगा रहे हैं।"

मैंने चितवन देखी। आँखें सजल हो आईं। कहा—"मैं तैयार हूँ।"

वह उठ खड़ी हुई। सामने आ, हाथ पकड़ कर कहा—"भाईजी, मेरी रक्षा कीजिए। सुकुल का घर छुटा हुआ है, जिस तरह हो, मुझे अपने कुल में मिला कर, सुकुल से ब्याह साबित कीजिए।"

उसकी बड़ी-बड़ी आँखें; दो बूँद आँसू कपोलों से बह कर मेरी जाँघ पर टपके। मैं खड़ा हो गया, और अपनी चादर से उसके आँसू पोंछते हुए कहा—"तुम मेरे चाचा जी की लड़की, मेरी छोटी बहन हुईं। मेरे चाचा सस्त्रीक बंगाल में आकर गुज़रे हैं। उनके एक कन्या भी थी, देश से आई थी।"

आनंद से भर कर, वह मेरा हाथ लेकर खेलने लगी। इसी समय सुकुल आए। पूछा—"रामकहानी हो गई?"

मैंने कहा—"अभी नहीं, कहानी से पहले भूमिका समाप्त हुई है।"

"सुकुल", भरकर उसने कहा,—"कोलंबस को किनारा दिखा।"

सुकुल बड़े प्रसन्न पद-क्षेप से मेरे पास आए, पूछा—"चाय कुछ बची है?"

"सब-की-सब", मैंने कहा—"पर ठंडी हो गई होगी, गरम करा लो।" बीवी की तरफ़ मुड़कर पूछा—"लेकिन तुम्हारा नाम अभी नहीं मालूम कर पाया।"

"जहाँ से आई हूँ," उसने कहा—"वहाँ की पुखराज हूँ, यहाँ की पुष्करकुमारी।"

"कुँवर" मैंने कहा—जल्दी करो, तुम्हारी मुर्ग़ी स्वादिष्ट होगी, पर कहानी और स्वाददार हो। दोनों के लिये उतावली है।"

कुँवर चाय बनाने लगी। पंप करते समय सर की साड़ी सरक गई। फिर नहीं सँभाला। सुकुल की आँखें लोभी भौंरे की तरह उसके मुँह से लगी रहीं।

(६)

मैंने वहीं स्नान किया। सुकुल की धोती पहनी! भोजन किया—बिलकुल मुसलमानी खाना। वैसी ही चपातियाँ, वैसा ही कोरमा। वही चटनी, वही मुरब्बा, वही मिठाई। खाते हुए पूछा—"कुँवर, हिंदू-भोजन भी पका लेती हो या नहीं?" उसने 'हाँ' कह कर सुकुल की तरफ़ इशारा किया कि इनसे सीखा है।

"किताब छोड़कर खाना पकाते बड़ी परेशानी होती होगी तुम्हें।" मैंने कहा।

"सुकुल के लिये मैं सब कुछ सह सकती हूँ।" उसने जवाब दिया।

भोजन समाप्त हुआ। हम लोग उसी कमरे में गए। सुकुल बच्चे को लिए हुए।

पान खाते-खाते मैंने कहा—"अब देर न करो कुँवर।"

कुँवर एक बार नीचे गई। दासी से कुछ कह कर दुमंज़िले का दरवाज़ा बंद कर आई, और अपनी कुर्सी पर बैठी।

मैंने कहा—"अब शुभस्य शीघ्रम् होना चाहिए।"

कुँवर बोली—"मेरी मा हिंदू हैं। लखनऊ के वाजपेयी खालेवाले घर की। मैं उन्हीं से हूँ।"

"तब तो तुम कुलीन हो"—मैंने कहा, "तुम्हारे पिता का नाम?"

"उसका नाम कौन ले," कुँवर बोली—"आपके चाचा जी मेरे पिता हैं।"

कुँवर भर गई। रुक कर सँभलने लगी। बोली—"वाजपेयी जी को एक ब्याह से संतोष नहीं हुआ। दूसरी शादी की। तब मैं पेट में थी। बेहटा मेरा ननिहाल है। सिर्फ़ नानी थीं। ईश्वर की इच्छा, उनका देहांत हो गया। तब मेरी मा ने ससुर को कई चिट्ठियाँ लिखवाईं। पर उन्होंने खबर न ली। घर में किसी तरह गुज़र न हुई, तब, लोटा-थाली बेच कर, उस खर्च से मा लखनऊ गईं। घर में पैर रखते, ससुर और पति ने तेवर बदले। पति ने कहा, इसके हमल है, हमारा नहीं। ससुर ने कहा, बदचलन है,

धरम बिगाड़ने आई है ; भली होती, तो चली न आती—वहीं के लोग परवरिश करते। पड़ोसियों की भी राय थी। सौत ने धरती उठा ली। एक रात को पति ने बाँह पकड़ कर निकाल दिया। मा रास्तों पर मारी-मारी फिरीं। सुबह जिस आदमी ने उनके आँसू देखे, वह मुसलमान था। उस वक़्त मा के दिल में हिंदू, धर्म और भगवान के लिये कितनी जगह थी, आप सोच सकते हैं। निस्सहाय, अंतःसत्त्वा, अबला केवल आश्रय चाहती थी, सहानुभूति-पूर्ण, मनुष्यता-युक्त ; वह एक मुसलमान से प्राप्त हुआ। मुसलमान की बातों में विधर्मीपन न था। एक स्त्री के प्रति पुरुष का जैसा चाहिए, वैसा आश्वासन, विश्वास और पौरुष था। मा आकृष्ट हुईं। वह मा को ले चला। आगे वह, पीछे मा। मा फूल के कड़े-छड़े, धोती पहने हुए, मुसलमान के पीछे चलती साफ़ हिंदू-महिला मालूम दे रही थीं। ऐसे वक़्त एक आर्यसमाजी की निगाह पड़ी। उसने पीछा किया। मुसलमान बढ़ता हुआ घर पहुँचा। पर उसे हिंदू का पीछा करना मालूम हो गया था, इसलिये डरा। घर देख कर वह आर्यसमाजी पुलिस को ख़बर देने गया। इधर मुसलमान ने भी पेशबंदी शुरू की। एक दूसरे मुसलमान दोस्त के ताँगे में परदा लगा कर मा को दूसरे मुसलमान के घर कर आया। पुलिस की तहक़ीक़ात जारी हुई, साथ-साथ मा का एक मुसलमान के घर से दूसरे मुसलमान के घर होना।

अंत में वह एक ऐसे घर पहुँचीं, जो एक इस्पेक्टर, पुलिस, का था। इंस्पेक्टर साहब छुट्टी लेकर उस वक्त रह रहे थे। नौकरी पर चलते समय वह मा को भी साथ लेते गए। अकेले थे। मा सुंदरी थीं।"

इच्छा हुई इंस्पेक्टर साहब का नाम पूछूँ, पर सोचा, वाजपेयी जी के नाम के साथ बाद को मालूम कर लूँगा।

कँवर कहती गई—"इस तरह इंस्पेक्टर साहब ने एक अबला को रक्षा की। मैं पैदा हुई। मेरे कई भाई-बहन और हुए। मैं उर्दू पढ़ती थी; मुसलमान पिताजी का लखनऊ तबादला होने पर, अँगरेज़ी पढ़ने लगी। नाइंथ क्लास में थी, मा से पिताजी की बातचीत हुई, मेरी शादी के बारे में। मैं कमरे के बाहर खड़ी थी। उन्हें मालूम न था। उस रोज़ मुझे कुछ आभास मिला। पहले मा को नाराज होने पर जिन शब्दों में अभिहित करते थे, उनकी सचाई समझी। मेरी आँख खुली। बड़ी लज्जा लगी, हिंदू-मुसलमान इन दोनों शब्दों पर किसी की तरफ़दारी के लिये। एक रोज़ मा को रोकर मैंने पकड़ा। जो कुछ सुना और समझा था, कहा, और बाक़ी ब्यौरा समझाने के लिये विनय की। एकांत में मा ने अपना सारा हाल सुनाया, और ईश्वर का स्मरण कर, उनकी इच्छा कह कर ख़ामोश हो गईं। मुझे जातीय गर्व से घृणा हो गई। मैंने कहा, मैं शादी नहीं करूँगी; जी भर पढ़ना चाहती हूँ। बस, यहीं

से मेरे विचार बदले। मैट्रीक्युलेशन पढ़ कर मैं आई० टी० कालेज गई, और दूसरे विषयों के साथ हिंदी ली। एफ़० ए० पास हो बी० ए० में गई। आखिरी साल सुकुल को देखा।"

"सुकुल को देखा" कहने के साथ कुँवर का जैसे नेह का स्रोत फूट पड़ा। कुछ रस-पान कर मैंने कहा—"कुँवर, यहाँ अच्छी तरह वर्णन करो; हिंदी के कहानी-लेखक और पाठक बहुत प्यासे हैं।"

कुँवर जम कर सीधी हुई। बोली—"सुकुल तब क्रिश्चियन कॉलेज में प्रोफ़ेसर थे। प्रिंसिपल को आश्वासन दिया था कि ईसाई-धर्म को वह संसार का सर्वश्रेष्ठ धर्म मानते हैं, लेकिन बूढ़े पिताजी का लिहाज़ है, और वह दो-चार साल में चलते हैं, बाद को सुकुल क्रिश्चियन के अलावा दूसरा अस्तित्व नहीं रखते। कुछ निबंध भी प्रमाण के तौर पर लिखे। दूरदर्शी प्रिंसिपल ने तब सिफ़ारिश की, और इन्हें जगह मिली। मेरे मकान के सामने ठहरे थे। बड़ी सँभाल से हैट लगाते थे कि चोटी कहीं से न देख पड़े, पगड़ी के भीतर विभीषण के तिलक की तरह। कभी मिसेज़ सुकुल आती थीं, कभी अकेले ठोंकते खाते थे। मुझे इतना जानते थे कि इस मकान से कोई कॉलेज जाती है। एक दिन की बात। मैं छत पर थी। शाम हो रही थी। सुकुल बराम्दे में बैठे थे। मौसम बरसात का। बादल मदन की बैजयंती बने

हुए। ठंडी हवा चल रही थी। पेड़-पौधे लोट-पोट। क्या कहूँ, मैं भी ऐसी हवा से लहराई। बहुत पहले, कुछ ईंटें बाहर देखने के लिये जमा कर रक्खी थीं। उन पर खड़ी हो गई। अवरोध के पार सर उठा कर देखा। सुकुल बैठे थे। कई बार पहले भी देख चुकी थी। सुकुल ने न देखा था। अब के निगाह एक हो ही गई। सुकुल की जनरल की मूछें—बाघ का मुँह—कालिदास की आँखें!—माफ़ कीजिएगा, मैं बकरे को कालिदास कहती हूँ।—टकटकी बँध गई। मुझे किसी ने जैसे गुदगुदा दिया। इतनी बिजली भर गई कि मैंने फ़ौरन सुकुल को फ़ौजी सलाम दी। होश में आ, लजा कर बैठ गई। फिर कई दिन आँखें नहीं मिलाईं, छिप-छिप कर देखती रही। सुकुल दूसरों की नज़र बचाते कितने बेचैन थे! मुझे लुत्फ़ आने लगा, शिकार की तड़फड़ाहट से शिकारी को जो ख़ुशी होती है। बरान्दे में सुबह-शाम बैठना सुकुल का काम हो गया। कहीं न जाते थे। इधर-उधर देख कर निगाह उसी जगह जमा देते थे। जगह ख़ाली देखकर आह भरते थे। मैं दीवार के छेद से देखती थी। एक रोज़ फिर उसी तरह दर्शन देने की इच्छा हुई। ईंटें बिखेर देती थी। इकट्ठी कीं। खड़ी हुई। सूरज मुँह के सामने था। सुकुल ने देखते ही हाथ जोड़ कर प्रणाम किया। मैं काग़ज़ का एक टुकड़ा ले गई थी। उसकी गोली बना कर उसे नीचे डाल दिया। उसपर सुकुल

की जैसी निगाह थी, वैसी नादिरशाह की कोहनूर पर न रही होगी, न अँगरेज़ों की अवध पर।"

मारे आकर्षण के मुझ से न रहा गया। पूछा—"क्या लिखा था?"

"कुछ नहीं," कुंवर बोली—"वह कोहनूर की ही तरह सफ़ेद था। सुकुल ने उसे उठा कर बड़े चाव से खोला। और, यद्यपि उसमें कुछ न लिखा था, फिर भी, कुछ लिखा होता, तो सुकुल को इतनी सरसता न मिली होती—उस शून्य पृष्ठ पर विश्व की समस्त प्रेमिकाओं की कविता लिखी थी। सुकुल उसे लेकर बराम्दे में आए, और मुझे दिखा कर हृदय से लगा लिया। मैं मुस्किरा कर विदा हुई। इस खाली के बाद भरी दागने लगी। रोज़ एक गोली चलाती थी, बिहारी, देव, पद्माकर, मतिराम आदि के दोहे और कवित्त लिख-लिख कर। अंत में सुकुल का क़िला तोड़ लिया। एक दिन एक गोली में दाग कर कि मैं तुम्हारे घर आऊँगी—रात-भर दरवाज़ा खुला रखना, गई, और अपने क़िले पर अधिकार कर समझा दिया कि इम्तहान के बाद स्थायी रूप से यहाँ आकर निवास करूँगी। सुकुल अपनी भूलों का बयान करते रहे—कब क्या करते, क्या हो गया। पर मैंने कोई भूल की ही नहीं थी। मिसेज़ सुकुल से शादी करके सुकुल के पिताजी ने और सुकुल ने, मुमकिन है, भूल की हो। मैंने यह ज़रूर सोचा कि मेरे कारण सुकुल की मुसी-

बतें बढ़ सकती हैं, पर साथ ही यह ख़याल आया कि कोई पहलू उठाइए, सामने मुसीबत है—अब क़दम पीछे नहीं पड़ सकता। जहाँ सुकुल हर चाल पर चूकते थे, वहाँ मैंने पहले ही मात दी—इम्तहान में बैठी, और सुकुल के घर आकर मालूम किया, पास हुई, और रायबहादुर बन्नूलाल-हिंदी-मेडल पाया। और फिर डिगरी लेने नहीं गई। इम्तहान के बाद, जब एक रात को हमेशा के लिये सुकुल के घर आकर बैठी, बड़ा तहलक़ा मचा, कुछ ढूँढ़-तलाश के बाद जब मैं नहीं मिली। निश्चय हुआ कि मेरी मर्ज़ी से किसी ने मुझे भगाया। सुकुल पर शक हुआ। थाने में रिपोर्ट हुई। सुकुल मुझे कहाँ रक्खें—घबराए। दीवार से बनी एक आलमारी थी। आलमारी के नीचे एक तहख़ाना छोटा-सा था। मैं अब जैसी हूँ, तब इससे और दुबली थी।—जगन्नाथजी में, कुछ महीने हुए, कलियुग की मूर्ति देखी—कंधे पर बीबी को बैठाले मियाँ लड़के की उँगली पकड़े बाप को धतकार रहे हैं, मेरी इच्छा हुई, सुकुल कलियुग बनें। सुकुल को कई दफ़े कलियुग बना चुकी हूँ। धतकारने के लिये, कहती थी, सामने समझो हिंदूपनरूपी तुम्हारा बाप है। सुकुल धतकारते थे। ग़रज़ यह कि उस तहख़ाने में मैं आसानी से आ सकती थी। सुकुल से मैंने कहा, ऊपर कुछ कपड़े डाल दो, साँस लेने की जगह मैं कर लूँगी। आलमारी के ऊपरवाले ताक़ों में चीज़ें पहले से रक्खी थीं।

बाहर से आलमारी बंद कराके ताला लगवा देती थी। इस तरह दो-दो, तीन-तीन, चार-चार घंटे दम साधने लगी। जब सुकुल कॉलेज जाते थे, तब बाहर से ताला बंद कर लेते थे। जब लौटते थे, तब बाहर दरवाज़ा बंद कर लेते थे। कोई पुकारता था, तो मैं तहख़ाने में जाती थी, आलमारी का ताला बंद करके सुकुल बाहर निकलते थे। तीसरे दिन सही-सही पुलिस आ गई। सुकुल उसी तरह बाहर निकले। प्रभातकाल था, बल्कि उषःकाल। दारोग़ा मुसलमान। डट-कर तलाशी लेने लगा। आलमारी के पास आकर खड़ा हुआ। मैं समझ गई, यह साँस की आहट ले रहा है। मैं मुंह से साँस लेने लगी। फिर आलमारी नहीं खोलवाई। दराज़ से देख-दाख कर चला गया। सुकुल उसे बिदा कर उसी तरह भीतर आए। मुझे निकाला। मैं खिलखिलाकर हँसी। फिर सुकुल से जल्द मकान बदलने के लिये कहा। तलाशी की ख़बर चारों तरफ फैली। सुकुल के गाँव भी पहुँची। अब तक सुकुल ने भी तलाशी का हाल लिखा, पर मकान बदल कर। यह मकान बड़ा था। बग़ल-बग़ल दो आँगन थे। मेरा ख़याल रख कर लिया गया था। चिट्ठी पा सुकुल के भाई मिसेज़ सुकुल को लेकर आए। हम पहले से सतर्क थे। बड़े मकान में सुकुल रहने लगे। मैं अपना गुप्त जीवन व्यतीत करती रही। मुझे कोई कष्ट न था; पर सुकुल की ड्यूटी बढ़ गई। सौभाग्य कहूँ या दुर्भाग्य,

३-४ महीने रह कर मिसेज़ सुकुल बीमार पड़ीं, और ७-८ दिन के बुखार में उनका इंतकाल हो गया। सुकुल के भाई चले गए थे। इन्होंने फिर किसी को नहीं बुलाया। किसी तरह मित्रों की मदद से उनका अंतिम संस्कार कर दिया। सुकुल से पूछ कर मैं तुम्हारा हाल मालूम कर चुकी थी; जानती थी, मुझे ही अपनी नाव खेनी है; पर तुम्हारा पता मालूम न कर सकी, इतनी ही चिंता रह-रहकर होती थी। मिसेज़ सुकुल के रहते मैंने मिस्टर सुकुल को तुम्हारे गाँव भेजा था। तुम्हीं-जैसे मेरे सहारा हो सकते थे। मिसेज़ सुकुल के रहने पर मुझे कोई अड़चन न थी, न अब, न रहने पर, कोई सुविधा है। यह बच्चा मिसेज़ सुकुल का है। बड़ी कठिनाइयों से तुम्हारा पता लगा था। मिसेज़ सुकुल के गुज़रने पर हम लोगों को विवश होकर लापता होना पड़ा। पास इतना धन था कि साल-डेढ़ साल का खर्च चल जाय। इतने दिनों बाद हमारी साधना सफल हुई।"

मैंने कुँवर को धन्यवाद दिया। कलकत्ते में ही उसका ब्याह कर दूँगा, यह आश्वासन देकर उससे विदा ली।

(७)

सेठजी बैठे थे। एकांत में ले जाकर यह हाल उनसे कहा। वह सहमत हो गए। कहा, मगर मुंशीजी से न कहिएगा, उनके पेट में बात नहीं रहती।

शुभ मुहूर्त में विवाह की तैयारियाँ होने लगीं। एक दिन आमंत्रित हिंदी-भाषी विभिन्न प्रांतों के साहित्यिकों की उपस्थिति में सुकुल के साथ श्रीपुष्करकुमारी का ब्याह कर दिया।

प्रीति-भोज में अनेक कनवजिए सम्मिलित थे। देश में यह शुभ संदेश सुकुल के पहुँचने से पहले पहुँचा। कुँवर अब भी है।